इकाई 20 जापान और प्रथम विश्व युद्ध

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 पृष्ठभूमि
20.3 प्रथम विश्व युद्ध
20.4 युद्धोत्तर स्थिति
20.5 अर्थव्यवस्था की स्थिति
20.6 उदारवादी मत
20.7 सारांश
20.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको निम्न बातों की जानकारी मिलेगी :

- जापानी अर्थव्यवस्था का परिपक्व होना,
- ताइशो काल का राजनीतिक घटनाक्रम,
- जापान का प्रारंभिक विस्तारवाद,
- विश्व युद्ध के दौरान जापान की भूमिका और उसका रवैया, और
- जापान के विदेशों से संबंध।

20.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध छिड़ जाने से जापान को अपनी कुछ आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को हल करने का अवसर मिला। इस घटनाक्रम को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम 1904-05 के रूस-जापान युद्ध के अंत से घटनाक्रम की छानबीन करें। यह युद्ध जापान के लिए परिवर्तनकारी रहा और वह अंतर्राष्ट्रीय रंगमंच पर एक शक्तिशाली अभिनेता या पात्र के रूप में उभरा। इसलिए इस इकाई की शुरुआत विश्व युद्ध से पहले की एशियाई राजनीतिक स्थिति पर चर्चा से की गयी है।

प्रथम विश्व युद्ध हमें इस खोजबीन के लिए एक उपयोगी सूत्र देता है कि जापान अपनी अंतर्राष्ट्रीय भूमिका के स्वरूप में किस ढंग से परिवर्तन कर रहा था, रूस-जापान युद्ध, के समय से ही जापान के सामने यह सवाल था कि वह किन देशों के साथ गठबंधन करे। उसी सवाल से जुड़ा मसला चीन और अन्य पड़ोसी देशों के साथ उसके संबंधों का भी था। इन सवालों पर विद्वानों के स्तर पर तो कोई बहस नहीं हुई, लेकिन ये सवाल जापान के भीतर की राजनीतिक लामबंदी और गुट-संघर्षों से जुड़े हैं। राजनीतिक दलों और नौकरतन्त्र, नौसेना और सेना के भीतर के गुटों ने अलग-अलग रणनीतियां दिखायीं। व्यापक तौर पर ये उन गुटों में आते थे जो एक वृहत्तर जपान की वकालत कर रहे थे और यह चाहते थे कि उसका विस्तार उत्तर की ओर हो। उत्तर की ओर विस्तार से जापान की रूस के साथ लड़ाई होती। लघुत्तर जापान की वकालत करने वाले जापान के विस्तार के लिए दक्षिण को स्वाभाविक क्षेत्र मानते थे।

इन बहसों में जापान के रूस और चीन के साथ संबंध निर्णायक हो गये। इन वर्षों में जापान चीन में अपना प्रभाव बढ़ाता और कब्जे को मजबूत करता लगातार आगे बढ़ता रहा। इससे वह इंग्लैंड और अमेरिका के और निकट आ गया, क्योंकि विश्व युद्ध में जापान मित्र राष्ट्रों की ओर था।

इस विस्तारवादी नीति का जापान के भीतर अर्थ होता था सेना और नौसेना पर खर्चों का बढ़ना। इस आर्थिक बोझ से अर्थव्यवस्था में और विभिन्न राजनीतिक गुटों के बीच भी तनावों की स्थिति पैदा हो गयी 1918 के चावल के दंगे जनता के लिए पैदा हुई समस्याओं की एक ऐसी ही अभिव्यक्ति थे। इस इकाई में इन्हीं कुछ पहलुओं पर विचार किया गया है।

विश्व युद्ध के अंत में वर्सेल्ज व्यवस्था बनी। इस इकाई में इस पर भी विचार किया गया है कि जापान ने नयी व्यवस्था के प्रति क्या रुख अपनाया और उसने विश्व में अपने लिए किस तरह की भूमिका को देखा।

20.2 पृष्ठभूमि

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में यूरोपीय विस्तारवाद विश्व के बड़े हिस्सों में अपना कब्जा और प्रभुत्व जमा चुका था और इसीलिए 1905 में प्रशा पर जापान की जीत को एक बड़ी घटना के रूप में देखा गया है। पहली बार किसी एशियाई ताकत ने एक यूरोपीय देश को मात दी थी। जापान में तो समाजवादियों, शांतिवादियों और दूसरे गुटों ने इस घटना की आलोचना ही की, लेकिन एशिया में आमतौर पर इसे एक श्रेयस्कर घटना माना गया और एशियाई राष्ट्रवादियों ने एक स्वर से इस उपलब्धि के लिए जापान की प्रशंसा की।

दूसरी ओर, जापान अपनी क्षेत्रीय स्वाधीनता को बनाये रखते हुए, अपनी अर्थव्यवस्था को बनाते हुए और पश्चिमी देशों से टक्कर लेते हुए, साथ ही साथ अपने क्षेत्र के भीतर विस्तार की नीति को भी अंजाम देता चल रहा था। फार्मूला (अब ताइवान) दक्षिणी सखालीन, कोरिया और चीन और दक्षिणी मंचूरिया ऐसे क्षेत्र थे जहाँ जापान अपना कब्जा बढ़ा चुका था या विस्तृत विशेषाधिकार हासिल कर चुका था (देखिए इकाई 19)। इस तरह एशियाई हितों के समर्थक के रूप में उभरने के साथ-साथ ही जापान एक साम्राज्यवादी भूमिका निभाना भी शुरू कर रहा था जिसके लिए उसे पश्चिमी ताकतों के समर्थन की आवश्यकता भी थी और तलाश भी। इंग्लैंड के साथ जापान के गठबंधन की आधारशिला पर इस विस्तार का निर्माण हुआ।

एशिया में जापान के विकास और उसकी शक्ति ने विभिन्न रंगों के राष्ट्रवादियों और गणतंत्रवादियों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले प्रकाश स्तम्भ का काम किया जिससे कि वे इस एशियाई आदर्श से सीख लें। 1880 के दशक के अंतिम वर्षों से झुण्ड के झुण्ड चीनी छात्र जापान में ज्ञानार्जन और अध्ययन के लिए आये। बेशक लंदन की जगह टोक्यो जाना कहीं सस्ता पड़ता था, लेकिन माना यह भी जाता था कि जापान ने एक साझा संस्कृति का अंग होते हुए भी एक आधुनिक औद्योगिक समाज का विकास किया था। इसलिए गणतन्त्रवादी जिस प्रकार के भावी चीन का निर्माण करना चाहते थे उसके लिए जापान मूल्यवान शिक्षा दे सकता था। लियांग ची चाओ से लेकर सून यात सेन तक तमाम चीनी सुधारक टोक्यो आये। इतनी बड़ी संख्या में चीनी छात्रों का जापान में आना किसी दूसरे एशियाई देश में छात्रों के भारी संख्या में पहली बार जाने का प्रतीक है।

चीनी और अन्य एशियाई छात्रों (इनमें कुछ भारतीय छात्र भी थे लेकिन उनके बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है) के अनुभवों और जापान की विस्तारवादी नीतियों ने मिलकर जापान की छवि में दोहरापन ला दिया। एक ओर तो वह एशिया और उसकी संस्कृति को बचाये रखने के पोषक पश्चिमी-विरोधी गठबंधन का प्रतिनिधि था, और दूसरी ओर वह अपने लोभी पक्ष को दिखा रहा था और इन देशों की अखंडता और स्वतन्त्रता के लिए खतरा बन रह था। एक डडों चाइनीज राष्ट्रवादी, फान बोई चाऊ ने 1917 में कहा था कि जापान एशिया का सबसे खतरनाक शत्रु था। फान ने रूस-जापान युद्ध के बाद टोक्यो से अपनी गतिविधियों का संचालन किया था। इसी तरह, कोरियाई राष्ट्रवादियों ने भी जापानी समाजवादियों के साथ आम भागीदारी से इंकार कर दिया था।

रूस-जापान युद्ध के बाद जापान के पास विदेशों के साथ व्यवहार के संदर्भ में तीन व्यापक विकल्प थे,

i) वह, पश्चिमी ताकतों की तरह, पूर्वी एशिया के क्षेत्र में अपने अधिकारों और

उत्तराधिकरों के लिए मान्यता प्राप्त करने का प्रयास कर सकता था और पश्चिमी ताकतों के साथ मिल कर, उनके सहयोग से काम कर सकता था।

ii) दूसरी ओर जापान पश्चिमी हितों की अनदेखी कर सकता था और यह तर्क दे सकता था कि उस क्षेत्र में उसके अधिकार सबसे महत्त्वपूर्ण थे।

iii) तीसरी संभावना यह बनती थी कि जापान इस बात को दृढ़ता से रखे कि उसे पश्चिमी प्रभुत्व को नष्ट करके और एशियाई सिद्धांतों पर आधारित एक नयी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की रचना के जरिए एक ऐतिहासिक उद्देश्य को पूरा करना था।

एक एशियाई गठबंधन के विचार (रेतनाई) को अनेक विचारकों ने अलग-अलग विवेचना के साथ उठाया। अपने सबसे विनम्र रूप में यह विचार एशिया के पुनरुद्धार के लिए एक जापानी गठबंधन की मांग करता था। इसका प्रतीक चीन में गणतांत्रिक क्रांति के लिए सून यात सेन के साथ पूरे मनोयोग से काम करने वाला मियाजा की तोतेन था। लेकिन अधिकांश के लिए यह जापान के लिए एशिया का नेतृत्व अपने हाथ में लेने का एक तरीका था। इस नेतृत्व के हाथ में आने से जापान पश्चिमी राष्ट्रों के खतरे और उनकी ताकत से टक्कर लेने के लिए आवश्यक जनसंख्या, संसाधन और क्षेत्र हासिल कर सकता था।

20.3 प्रथम विश्व युद्ध

अगस्त 1, 1914 को जर्मनी ने रूस के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। जर्मनी आस्ट्रिया और इटली के साथ एक तिहरे गठबंधन में बंधा हुआ था, जबकि रूस, इंग्लैंड और फ्रांस के साथ तिहरे समझौते का अंग था। जल्दी-जल्दी फ्रांस और इंग्लैंड के विरुद्ध भी युद्ध की घोषणा हो गयी। इससे चीन में जर्मनी के क्षेत्रों का सवाल उठा। जर्मनी के पास चिंगदाओं में रियायती क्षेत्र थे और इंग्लैंड के पास वेहाइवे में, ये दोनों ही शांतुंग प्रायद्वीप में थे। जापान ने 4 अगस्त को यह घोषणा की कि वह तटस्थ रहेगा, लेकिन उसने यह वचन भी दिया कि अगर जर्मनी ने प्रमुख अंग्रेजी अड्डे हांग कांग पर, या वेहाइवे पर आक्रमण किया तो वह इंग्लैंड का साथ देगा। 8 अगस्त को जापान ने चीनी जल-सीमा में जर्मनी के कुछ व्यापारी जहाजों को नष्ट करने का अनुरोध किए जाने पर जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

जापान की कार्यवाहियां परिणामों का हिसाब-किताब लगाकर की जाने वाली कार्यवाहियां थीं और उनसे उसके उद्देश्यों की पूर्ति होती थी, और उसका यूरोप में चलने वाले युद्ध, से इतना लेना-देना नहीं था। जापान की दृष्टि में यह "एशिया में उसके अधिकारों और हितों को जमाने" का दुर्लभ अवसर था।

जापान ने अपने औपनिवेशिक क्षेत्र मेजी काल के प्रारंभिक वर्षों में हथियाये थे, और तब से उसकी विशेषतौर पर कोरिया के प्रति आक्रामक नीतियों का वृहतर जापान के समर्थक विचारकों ने समर्थन किया था। अपने साम्राज्य के विस्तार में, प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने से जापान को माइक्रोनेशिया के द्वीपों : मार्शल द्वीप, कैरोलीन द्वीप और मरीना द्वीप (गुआम को छोड़ कर), और चिंगदाओ पर जर्मनी के कब्जे को हथियाने का अवसर मिल गया। जापान ने इंग्लैंड के साथ मिलकर कई सैनिक कार्यवाहियां की और चिगदाओ पर कब्जा कर लिया। जापान ने 29,000 सैनिक दिए जबकि अंग्रेज सैनिकों की संख्या केवल 1,000 थी। अक्तूबर में, जपानियों ने माइक्रोनेशिया के द्वीपों पर कब्जा कर लिया। युद्ध समाप्त होते-होते जापान के 2,000 सैनिक हताहत हो चुके थे और वह 5,000 जर्मन सैनिकों को बंदी बना चुका था।

जापान को साम्राज्य के इस भौगोलिक विस्तार को पक्का करने के लिए इन नये क्षेत्रों पर अपने अधिकारों को हासिल करने और उनके वास्ते समर्थन हासिल करने के लिए एक राजनयिक अभियान छेड़ना आवश्यक हो गया। बाद में राष्ट्र-संघ के अधिदेश (आदेश) पर माइक्रोनेशिया के द्वीप जापान को वर्ग "सी" क्षेत्रों के तौर पर इस शर्त के साथ दे दिये गये कि उसे इन द्वीपों की किलेबंदी करने की अनुमति नहीं होगी। चिंगदाओ केवल कुछ ही समय के लिए जापान के पास रहा क्योंकि इसे हथियाने के विरोध में चीन और अमेरिका में

विरोध हुए। 1922 के वाशिंगटन सम्मेलन में जापान को दबाव में आकर चिंगदाओ को लौटाना पड़ा।

जापान ने अपने औपनिवेशिक क्षेत्रों पर 1920 के दशक के प्रारंभ तक कब्जा कर लिया था, और प्रथम विश्व युद्ध में इसकी इस शक्ति को पश्चिमी राष्ट्रों ने अनिच्छा से ही सही स्वीकृति दे दी। जापानियों ने जो "सम्यीकरण अभियान" बनाया उसका एक लंबा इतिहास था जिसकी अवधारणाएं और पूर्वानुमान उन अवधारणाओं और पूर्वानुमानों से भिन्न थे जिन पर पश्चिमी राष्ट्रों ने अपने साम्राज्यों का निर्माण किया था। जापान के उपनिवेश पूर्वी एशिया के क्षेत्र में होने के कारण लोगों में प्रजाति और संस्कृति की समानता का बोध था, और जापानियों ने, बहुत कुछ फ्रांसीसी उपनिवेशिकों की तरह "आत्मसातकरण" (दोका) के विचार को आगे रखा जिसके तहत एशियाई अस्मिता (पहचान) के आधार पर इन एशियाईयों को एकजुट करना और उनके बीच के मतभेदों को समाप्त करना था। जब इन विचारों को लागू किया गया तो कई समस्याएँ सामने आईं। इन उपनिवेशित लोगों को प्राप्त अधिकारों जैसे मुद्दों को लेकर समस्याएं उठ खड़ी हुईं।

हारा ताकेशी की सरकार ने उपनिवेशों में जापान के वैधानिक और प्रशासनिक ढांचे को लागू करने का प्रयास किया ताकि वे भी उन्हीं नियमों-विनियमों से शासित हों। इन उदारवादियों ने उपनिवेशों के लिए शिक्षा, नागरिक अधिकारों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व और मतभेद समाप्त करने की वकालत की। उनका तर्क था कि उपनिवेशितों को स्वाधीनता की नहीं समानता की इच्छा थी। 1920 में हारा ताकेशी ने कहा था, "अधिकांश कोरियाइयों की इच्छा स्वाधीनता की नहीं, बल्कि जापानियों के समान समझे जाने की थी।"

जापान के राजनीतिक क्षेत्र में विभिन्न दबाव गुटों या प्रभावशाली समूहों के बीच संघर्ष था। सेना और उसके यामागाता अरितोमों या कत्सुरा तारो जैसे समर्थक कोरिया के पार मंचूरिया में और फिर मुख्य चीन में विस्तारवादी नीति के पक्ष में थे। उनका तर्क था कि इसके लिए सैनिक शक्ति में पच्चीस डिवीजन की वृद्धि आवश्यक थी। यामागाता के एक आश्रित, तनाका गीची, ने 1906 में लिखा कि जापान को" अपनी द्वीपीय स्थिति से मुक्त होना चाहिए, एक महाद्वीपीय राज्य बनना चाहिए, और विश्वासपूर्वक अपनी राष्ट्र शक्ति का विस्तार करना चाहिए।"

दूसरी महत्त्वपूर्ण नीतिगत स्थिति ताइवान, दक्षिणी चीन होते हुए दक्षिण-पूर्व एशिया में दक्षिणी विस्तार के पक्ष में थी। इसकी समर्थक नौसेना थी जिसके विचारक यह मानते थे कि एक द्वीप के रूप में जापान को अतिक्रमण से डरने की आवश्यकता नहीं थी, बल्कि उसे तो अपने व्यापारिक मार्गों की रक्षा करनी चाहिए।

सरकार इन उद्देश्यों की प्राप्ति को लेकर कुल मिलाकर सतर्क थी। उसे इस बात का अहसास था और उसने स्पष्ट यह कह भी दिया था कि वह केवल पश्चिमी ताकतों के सहयोग से अपने कब्जे का विस्तार कर सकती थी। सेना और यामागाता वाली स्थिति का ही वर्चस्व था, और इसलिए सेना पर बढ़े हुए खर्च के सवाल पर उसका राजनीतिक दलों के साथ संघर्ष हो गया।

सन् 1907 में एक नयी योजना में रूस, अमेरिका, जर्मनी और फ्रांस को इसी क्रम में, संभावी शत्रु माना गया। इन देशों की जापान के लिए खतरा बनने की सामर्थ्य से टक्कर लेने के लिए सेना को पच्चीस डिवीजन तक बढ़ाने की और नौसेना को आठ युद्धपोतों और आठ युद्ध क्रूजरों (युद्धपोतों से अधिक तेज गति वाले पोत) तक बढ़ाने की आवश्यकता थी। यह रूस-जापान के युद्ध स्तर से 150 प्रतिशत की वृद्धि थी। लेकिन, जापान की वित्तीय समस्याओं के कारण यह आसानी से संभव नहीं था।

सेना और नौसेना के बीच प्रतिद्वंद्विता बनने से यह स्थिति और भी जटिल हो गयी। दोनों गुटों के समर्थक उनके उद्देश्यों का समर्थन कर रहे थे। सेना जब सैओंतजी सरकार को प्रभावित नहीं कर पायी तो उसने अपने युद्ध मंत्री को हटा लिया और 1912 में, सरकार गिर गयी। इस "ताइशो राजनीतिक संकट" को विस्तार से समझने की आवश्यकता है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में राजनीतिक स्थिति यह थी कि हानबत्सु या अल्पतंत्र नौकरशाही गुटों के बीच संघर्ष था। ये दोनों वर्ग एकताबद्ध नहीं थे और उनमें आंतरिक विभाजन थे। 1900 में गठित बड़ी पार्टी सेयुकाई और 1913 में स्थापित दोशिकाई (1916

में उसका नाम केनसेकाई और 1927 में मिनसेतो हो गया) ने यह सुनिश्चित करने में मदद दी कि सरकारों का गठन पार्टियों के समर्थन से होगा।

सन् 1911 में सैओनजी ने अपना दूसरा मंत्रिमण्डल गठित किया था और सेयूकाई के समर्थन से वह जापान की गंभीर वित्तीय स्थिति को स्थिर करने और खर्चों में कमी करने का प्रयास कर रहा था। जब सेना की लीक पर न चलने के कारण उसकी सरकार गिर गयी तो, कत्सुरा तारो ने सरकार गठित करने का आमंत्रण स्वीकार किया। लेकिन कत्सुरा ने शाही घराने में दो महत्त्वपूर्ण पद संभाले, और इसके संविधान के सिद्धांतों के विपरीत होने के कारण व्यापक तौर पर आलोचना हुई। जनता के आक्रोश ने संविधान को समर्थन देने के लिए पहले आन्दोलन को भड़काया। रैलियां भी आयोजित की गयीं क्योंकि कत्सुरा ने एक शाही आज्ञा की मदद से नौसेना को मंत्री देने से वंचित कर दिया, ओर इसके कारण और भी विरोध प्रदर्शन हुए।

दिसम्बर 1912 में संविधान सुरक्षा संघ का गठन किया गया। जल्दी ही इसने एक जनआंदोलन आयोजित किया और सरकार को गिरा दिया। तब दोशिकाई के समर्थन से ओकुमा शिगेनोबू सत्ता में आया और इसके साथ हाऊस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स में विभाजित पार्टियों के दौर की शुरुआत हुई। यह स्थिति हानबत्सु के पक्ष में थी।

इस राजनीतिक स्थिति में जापान ने गठबंधनों के एक ऐसे ढाँचे को बनाने का प्रयास किया जो उसके लिए एक स्थायी सरकार सुनिश्चित करेगा और उसे उसके लक्ष्यों को पूरा करने योग्य बनाएगा। जनवरी 18, 1915 में इसने राष्ट्रपति युआन शिकाई के सामने अपनी इक्कीस कुख्यात मांगें रखीं। इन मांगों पर इकाई 21 में विचार किया गया है, लेकिन यहाँ संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विस्तृत अधिकार और विशेषाधिकार मांगे जाने के अलावा पांचवी मांग वर्ग ने चीन को कोरिया की स्थिति में ला दिया होता जहाँ जापानी सलाहकार देश चला रहे होते। इंग्लैंड और अमेरिका के इन मांगों पर आक्रोश व्यक्त करने के फलस्वरूप जापान ने पांचवे मांग वर्ग को वापस ले लिया। लेकिन ये दो ताकतें जापान के इरादों की ओर से सावधान हो गयीं।

बाहरी मंगोलिया की स्वाधीनता और पश्चिमी चीन में रूस द्वारा आवागमन की स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के साथ चीन का विभाजन चल रहा था। जापानियों ने 1913 के रूस-जापानी समझौते के जरिए पूर्वी आंतरिक मंगोलिया में प्रभाव जमा लिया था।

इक्कीस मांगों को जापानी सरकार के भीतर हर किसी का समर्थन नहीं मिला। विदेश मंत्री मोतोनो इचिरो ने यह माना कि जापान में जन प्रतिरोध के कारण लंबी अवधि के लिए चीन पर अपनी पकड़ बनाये रखने की शक्ति नहीं थी।

सन् 1917 में रूसी क्रांति हो गयी और उसने एक नयी स्थिति को जन्म दिया जिसके प्रभाव विशेषतौर पर इस क्षेत्र में जापानी नीति के लिए, दूरगामी हुए। अब जापान ने साइबेरिया अभियान में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के साथ भागीदारी की। तेराउची मंत्रिमण्डल के अधीन जापान ने सत्तर हजार सैनिकों की सबसे बड़ी टुकड़ी भेजी। ये सैनिक वहाँ अभियान पूरा होने के बाद भी सबसे लंबे समय तक रहे। साम्यवाद के खतरे के कारण जापान ने चीन पर एक संयुक्त रक्षा संधि पर हस्ताक्षर करने का दबाव डाला जिससे उसकी सेनाएं चीन में आजादी से आवागमन कर सकती थीं।

चीन में जापान के लक्ष्यों के पक्ष में न रहने वाला, और अभी भी "खुला द्वार" की नीति का समर्थन करने वाला अमेरिका भी धीरे-धीरे स्वीकृति की स्थिति में आ गया। नवम्बर, 1917 में इशी किकुजीरो और रॉबर्ट लानसिग ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसमें :

दोनों देशों ने चीन की क्षेत्रीय अखंडता और सब के लिए समान व्यापार को मान्यता दी, और अमेरिका ने यह स्वीकार किया कि चीन में जापान के "विशेष हित" थे।

लेकिन युद्ध समाप्त होने के बाद पश्चिमी देशों ने इशी की इस विवेचना से असहमति प्रकट कर दी कि इसका अर्थ चीन पर जापान के विशेष अधिकार होता था।

जापान ने वित्तीय ऋणों के जरिए भी चीन पर अपना प्रभाव बढ़ाया। 1917-18 के बीच कुल जापानी ऋण लगभग 20 करोड़ येन के थे और बदले में जापान को 1915 की संधि के अधिकारों और इसके अतिरिक्त रेलपथ और उत्खनन के अधिकारों की गारंटी मिली।

बोध प्रश्न 1

1) "एशियाई हितों के उद्देश्य का समर्थन करते समय जापान, वास्तव में, अपने विस्तारवादी हितों को ही आगे कर रहा था" क्या आप इस व्क्तव्य से सहमत हैं ? लगभग 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

2) जापान प्रथम विश्व युद्ध में क्यों शामिल हुआ ? लगभग पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

....

3) जापान के पास 1905 के बाद पश्चिमी देशों से व्यवहार के लिए कौन से तीन विकल्प थे ?

....

i) ....

ii) ....

iii) ....
....
....
....

20.4 युद्धोत्तर स्थिति

युद्ध के अन्त के फलस्वरूप 1919 मे वर्सेल्ज शांति सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन ने एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का आधार बनाया जिसका और विकास 1921-22 के वाशिंगटन सम्मेलन में हुआ। बाद के वर्षों की एक उल्लेखनीय बात यह है कि जापान ने इस व्यवस्था से अलग होने का प्रयास किया क्योंकि यह व्यवस्था इंग्लैंड और अमेरिका के हितों की रक्षा करने के लिए बनायी गयी थी।

जापान की वर्सेल्ज और वाशिंगटन सम्मेलनों में दी गयी व्यवस्थाओं से असंतुष्टि का मूल कारण यह था कि उसने युद्ध के दौरान एशिया और प्रशांत क्षेत्र में जो कुछ हासिल किया था उसमें से बहुत कुछ उसे छोड़ना पड़ा था। अमेरिका ने शांतुंग पर जापान के कब्जे को स्वीकार करने वाली पेरिस शांति संधि को नहीं माना था। अंततः प्रथम विश्व युद्ध की इन उपलब्धियों को वाशिंगटन सम्मेलन में रद्द कर दिया गया "शाही या साम्राज्यिक कूटनीति का सार" कहे जाने वाले आंग्ल-जापानी गठबंधन का अंत हो गया और उसका स्थान किसी और ने नहीं लिया। साइबेरियाई हस्तक्षेप के दौरान जापान उत्तर-पूर्व एशिया के जिन क्षेत्रों में घुस गया था वहाँ से उसे हटना पड़ा, विशेषतौर पर समुद्रवर्ती प्रांतों, उत्तरी मंचूरिया और पूर्वी साइबेरिया से। इसके अलावा, नौसैनिक क्षमता पर लगायी गयी सीमा के कारण जापान की क्षमता कम रह गयी। अमेरिका, इंग्लैंड और जापान के बीच युद्धपोतों का अनुपात 5:5:3 रखा गया। चीन में जापान को शांतुंग का रियायती क्षेत्र चीन को लौटाना पड़ा। यह समझौता हुआ कि सिंगापुर के पूर्व या हवाई के पश्चिम मे कोई आंग्ल-अमेरिका अड्डा नहीं बनाया जाएगा। 1922 में हुई नौ शक्तियों की संधि के तहत चीन और अन्य ताकतों के साथ सभी संधियां समाप्त कर दी गयीं और "खुला द्वार" सिद्धांतों को लागू किया गया। इस संधि में व्यवस्था को धीरे-धीरे समाप्त कर देने के सिद्धांत को भी रखा गया और चीन की सीमा-शुल्क दरों और क्षेत्रातीतता के संबंध में सम्मेलनों की मांग रखी गयी। इस तरह, युद्ध की समाप्ति और वाशिंगटन सम्मेलन के बीच जापान को यह लगा कि उसके विशेषाधिकारों को उससे अनुचित ढंग से छीन लिया गया था।

इन उपायों को तुरंत लागू नहीं किया गया। चिंदाओ वापस कर दिया गया और इंग्लैंड अंततः वेहाइवे से हट गया। शुल्क दर सम्मेलन 1925-26 में जाकर ही हो सका, लेकिन इसमें चीन की शुल्क-दर स्वायत्तता को 1929 तक स्थगित कर देने के अलावा और कोई समझौता नहीं हुआ। चीन की आंतरिक समस्याओं के अलावा 1924 में अमेरिका के पारित किये हुए बहिष्कार अधिनियम जापान-अमेरिका संबंधों के क्षेत्र में एक बड़ी समस्या थी।

युद्ध के बाद के दौर के घटनाक्रम से जापान की असंतुष्टि इस धारणा के कारण थी कि उसके साथ अनुचित व्यवहार हुआ था। 1918 में एक प्रभावशाली राजनयिक, कोनों फ्यूमीमासे, ने यह तर्क दिया था कि वर्सेल्ज व्यवस्था के तहत जापान एक पिछड़ा देश ही बना रहेगा। फिर भी, उसके अलावा और भी नेता और राय बनाने वाले थे जिनका तर्क था कि जापान को वर्तमान घटनाओं को स्वीकार करना चाहिए और राष्ट्रसंघ के गिर्द जो नयी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था बन रही थी उसके साथ अपने आपको समायोजित करते हुए काम करना चाहिए।

वाशिंगटन व्यवस्था में अमेरिका, इंग्लैंड और जापान के बीच एक संयुक्त और सहकारी प्रयास बनाने की संभावना थी। इसकी नीतियों के तहत लागू किए गए उपाय हमेशा जापान के हितों के विरुद्ध नहीं रहे। उदाहरण के लिए, जापान पर लगाये गए प्रतिबन्ध मंचूरिया और मंगोलिया जैसे उन दो क्षेत्रों पर लागू नहीं होते थे जिन्हें जापान अपने हितों के लिए महत्त्वपूर्ण मानता था।

जापान जिन रियायतों को देने के लिए प्रतिबद्ध हुआ उसे एक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में दूसरी ताकतों के साथ भागीदारी करने की एक छोटी-सी कीमत माना जा सकता है। वाशिंगटन

संधि में हथियारों को सीमित करने की जो मांग की गयी थी उससे जापानी राजनीतिकों को हथियारों पर होने वाले खर्च में कटौती करने का और उसके साथ ही सेना की भूमिका को भी कम करने का अवसर मिला जो एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर रही थी। दो भूतपूर्व प्रधान मंत्रियों, ताकेशी और ताकाहाशी कोरेकियो, के पास सेनाध्यक्ष के पद को समाप्त करने की योजना भी थी। लेकिन उन्हें उसमें सफलता नहीं मिली। इस नये ढाँचे को स्वीकार करने वाला सबसे प्रतिनिधि व्यक्ति, राजनयिक शिदेहारा किजरो था जिसने पाँच मिनसेतो मंत्रिमण्डलों में विदेश मंत्री के रूप में काम किया। उसकी नीति का आधार अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, चीन में हस्तक्षेप न करने की नीति और जापान की शक्ति की स्थापना और संरक्षण के लिए आर्थिक कूटनीति से काम लेना था।

औपनिवेशिक साम्राज्य का निर्माण बेशक जापान की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया था और इसके लिए जो नीति बनी वह जापानी अर्थव्यवस्था की बदलती आवश्यकताओं के दबाव में बनी। 1930 के दशक तक जापान का विकास एक कृषि प्रधान समाज से औद्योगिक राष्ट्र की ओर हो रहा था। बढ़ते हुए औद्योगिक क्षेत्र को बाजार चाहिए थे और एक संरक्षित उपनिवेश ये बाजार आसानी से दे सकता था। इसका मतलब यह निकलता था कि उपनिवेशों में से किसी भी प्रतियोगी किस्म के उद्योग की अनुमति न दी जाए और इन देशों के व्यापार को जापान में ले आया जाए।

आबादी बढ़ने से भी खाद्य-सामग्री की आपूर्ति बढ़ाने की आवश्यकता आ पड़ी। ताईवान और कोरिया क्रमशः चीनी ओर चावल के बड़े वितरक हो गये, लेकिन चावल की कीमत में निरंतर वृद्धि के कारण जापान ने कोरिया में चावल का उत्पादन तेज करने के लिए उपाय लागू कर दिए। इन उपायों के फलस्वरूप तकनीकी सुधार भी हुए और खेती की हुई भूमि की माप में भी वृद्धि हुई।

20.5 अर्थव्यवस्था की स्थिति

जापानी अर्थव्यवस्था में वृद्धि हो रही थी लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के आने तक जापान गंभीर वित्तीय समस्याओं से जूझ रहा था और इससे उसकी वृद्धि दर धीमी हो गयी थी। बाहर के ऋण बढ़ते जा रहे थे और इन समस्याओं का मूल कारण रूस-जापान युद्ध था। अकेले युद्ध पर ही 2 अरब येन से ऊपर खर्च हुए थे और 1854-55 के चीन-जापान युद्ध के बाद हुई संधि की तरह, इस युद्ध के बाद हुई शांति संधि में जापान को कोई हर्जाना नहीं दिया गया। यही कारण था कि पोर्टसमाउथ संधि का हिंसक विरोध हुआ। इस युद्ध का खर्च उठाने के लिए जापान ने विदेशों से ऋण लिया था और उस पर 1907 तक 1.4 अरब येन का कर्ज चढ़ गया था और 1909-13 के बीच चालू अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों में उसका घाटा 8 से 9 करोड़ येन प्रतिवर्ष था।

विश्व युद्ध में जापानी अर्थव्यवस्था को यूरोप और एशिया के सभी देशों से और अधिक माल भेजने के प्रस्ताव मिले क्योंकि पश्चिमी प्रतिद्वंद्वी कहीं और उलझे हुए थे। वास्तविक कुल राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि से अर्थव्यवस्था की स्थिति में कुछ सुधार हुआ और निजी निवेशों में वृद्धि हुई लेकिन, आय के अंतर बढ़ गये क्योंकि निश्चित आय वालों को युद्ध बाद गरमबाजारी से उतना लाभ नहीं मिला जितना कि सट्टेबाजी करने वालों को। युद्ध ने निजी उद्योग और वाणिज्य को लाभदायक और कहीं अधिक विश्वासपूर्ण बना दिया। इन आधुनिक उद्योगों के अगुआओं ने 1917 में औद्योगिक क्लब की स्थापना की जो उनकी नयी उभरती शक्ति का प्रतीक थी।

अर्थव्यवस्था में वृद्धि का सबसे अच्छा प्रतिनिधित्व निर्माण उद्योग के उत्पादन में वृद्धि देखने को मिला जिसमें 1914-19 के बीच 72 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि मजदूर बल में केवल 42 प्रतिशत बढ़ा। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रम उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई। इस क्षेत्र के भीतर सर्वोच्च वृद्धि का क्षेत्र मशीन उद्योग में था जिसमें पोत निर्माण, वाहन, मशीनी उपकरण आदि आते थे। तालिका—1 में दिये हुए आंकड़े कुछ क्षेत्रों की वृद्धि दर को बताते हैं। पोत निर्माण में भी तेजी से विस्तार हुआ। सामानों की कीमत तो बढ़ी, लेकिन फिर भी मुनाफे की दर में वृद्धि हुई और माल-आपूर्ति के प्रस्तावों में भी बढ़ोत्तरी हुई। इस वृद्धि के कारण निर्माण के तरीकों में भी सुधार हुआ जिससे वही काम आधे समय में होने लगा। विश्व युद्ध के बाद मांग में गंभीर कमी आ गयी जिससे छोटी कंपनियां

प्रभावित हुईं, लेकिन मित्सुबिशी जैसी बड़ी कंपनियों को नौसेना की बढ़ती मांगों का सहारा मिल गया।

तालिका 1

वृद्धि दर (प्रतिशत प्रति दशक)

उद्योग	1906-16	1910-20
रसायन	26.1	64.3
कपड़ा	36.8	39.4
निर्माण	36.6	22.8
मशीनरी	88.8	159.1
निर्माण (उत्पादन)	35.4	55.6
धातु	41.2	71.9

स्रोत : काजुशी ओकावा और मियोहे शिनोहारा (सं०) **पैन्टर्स ऑफ जापानीज इकॉनॉमिक डेवलपमेंट, लंदन 1979**

युद्ध के कारण विद्युत शक्ति उद्योग के लिए भाप और जल भट्टियां बनाने जैसे सामान्य अभियान्त्रिकी के विकास में भी तेजी आयी। युद्ध के कारण आयात में जो कमी हुई उससे कुछ छोटे उत्पादकों को अपनी उत्पादन क्षमता को विकसित और बेहतर करने का अवसर मिला। युद्ध के समय के मुनाफे वहाँ भी ऊँचे थे जहाँ गंभीर अभाव था (जैसे इस्पात में)। इस्पात के उत्पादन की जापान की अपनी क्षमता भी सीमित थी और ढलवां लोहे की कीमत 1913 के औसत 49 येन से 541 येन हो गयी। युद्ध के पहले एक करोड़ दस लाख के नुकसान में चल रही सरकारी इस्पात कंपनी, यावाता, ने युद्ध के दौरान कुल 15 करोड़ 10 लाख येन का मुनाफा कमाया।

युद्ध बाद के वर्षों में बड़े और छोटे उद्योगों के बीच के अन्तर में वृद्धि हुई। बड़े उद्योगों ने युद्ध बाद की मंदी से निपटने के लिए मजदूरों में कमी की और उनकी क्षमताओं का और निपुणता से उपयोग किया। छोटे उद्योगों ने श्रम-तीव्रता तरीकों को अपनाना जारी रखा जिससे दोहरे आर्थिक ढांचे का उदय हुआ।

कृषि के क्षेत्र में वृद्धि का बड़ा कारण प्रौद्योगिकी का और अधिक विस्तार और बढ़ी हुई स्वदेशी और विदेशी मांग थी। फिर भी, खाद्य सामग्रियों की कीमतों में हुई तेज वृद्धि से कई वर्गों में असंतोष की स्थिति बन गयी—विशेष तौर पर शहरी उपभोक्ताओं में, लेकिन बड़े और छोटे दोनों किस्म के काश्तकारों में भी असंतोष की स्थिति बनी। यह असंतोष 1918 के चावल दंगों के रूप में सामने आया जिसकी शुरुआत गृहणियों ने की। ये दंगे जापान के बड़े हिस्सों में फैल गये और तेराउची सरकार के गिरने का कारण बने।

बढ़ते उदारवादी बुद्धिजीवियों ने इन दंगों को बहुत गंभीरता से देखा। ओरिएंटल इकॉनॉमिस्ट के एक संपादकीय में यह लिखा गया कि ये दंगे यह दिखाते थे कि "दुर्भाग्य से हमारे देश में राजनीतिक प्रक्रिया प्रभावी ढंग से केवल संपत्तिधारी अल्पसंख्यकों के लिए काम करती है, जबकि जिन वर्गों के पास संपत्ति नहीं है उन्हें कोई सुरक्षा नहीं दी जाती। एक अर्थ में यह कहना संभव है कि जिनके पास संपति नहीं उनके पास कोई सरकार नहीं है, यही असली कारण है दंगों का।"

20.6 उदारवादी मत

जापान के भीतर उदारवादी मत रखने वाले युद्ध में जनतन्त्रों की जीत को इस पुष्टि के रूप में देखते थे कि विश्व की प्रवृत्ति जनतांत्रिक सरकार की ओर थी। दूसरी ओर रूसी क्रांति ने समाजवादियों और मार्क्सवादियों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे समाजवादी सिद्धांतों को साकार करने के लिए काम करें। उदारवादियों ने अक्टूबर क्रांति को इस बात का संकेत माना कि वर्ग संघर्ष को कम किया जाना चाहिए और सामाजिक एकजुटता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

उदारवादी दृष्टिकोण का सबसे अच्छा नमूना योशिनो सकुजो के विचारों में देखने को

मिलता है। योशिनो ने 1916 में संवैधानिक सरकार पर एक प्रभावशाली लेख लिखा। योशिनो के सामने मेजी संविधान पर जनतंत्र का आधार बनाने की समस्या थी जो स्वयं इस सिद्धांत पर आधारित था कि प्रभुसत्ता सम्राट के हाथों में थी। इसलिए, योशिनो ने यह तर्क दिया कि पश्चिमी जनतंत्र में दो अवधारणाएं थीं।

- वैधानिक (कानूनी) तौर पर प्रभुसत्ता जन (लोगों) के हाथों में थी, और
- राजनीतिक तौर पर प्रभुसत्ता का इस्तेमाल जन के हाथों में था।

इन दो विचारों को जनतंत्र की पश्चिम की अवधारणा में मिला दिया गया था, जबकि जापान में इनमें से पहला विचार लागू नहीं होता था क्योंकि वहाँ राज्य की प्रभुसत्ता सम्राट के हाथों में थी। दूसरा विचार जापान के संदर्भ में उपयुक्त था क्योंकि वहाँ प्रभुसत्ता का इस्तेमाल लोगों द्वारा किया जा सकता था।

योशिनो ने आगे की जनतंत्र की व्याख्या की, जिसका उसने जापानी में "मिनपोनशुगी" शब्द में अनुवाद किया। लेकिन यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि उसका और उस जैसे चिंतकों का जनतंत्र का विचार सीमित था और उसमें समाज के काम करने के वास्तविक ढंग पर ध्यान नहीं दिया गया था। उसी असफलता के कारण घटनाओं की गति ने इनमें से अनेक चिंतकों को और भी क्रांतिकारी दृष्टिकोण अपनाने को बाध्य कर दिया।

योशिनो की मदद से रेमेकाई संगठन की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य नये राजनीतिक विचारों का प्रचार करना था लेकिन धीरे-धीरे इसके अनेक सदस्यों ने और आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपना लिए। एक जाने-माने जनवादी और उदारवादी चिंतक, ओयामा इकुओ, ने यह तर्क देना शुरू कर दिया कि केवल राजनीतिक अवसर ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समानता भी आवश्यक थी। एक और प्रभावशाली चिंतक, हासेगावा न्योजेकाम, ने भी ऐसा ही दृष्किोण अपनाया। अब निर्णायक शब्द "पुनःनिर्माण" (काइज़ो) और "मुक्ति" (काइहो) थे, जो उस अपेक्षाकृत समतावादी और न्याय-साम्य रखने वाले समाज की इस खोज का प्रतीक थे जहाँ लोगों को वास्तविक समानता मिलेगी।

जो समाजवादी मैजी सम्राट के खिलाफ एक षड्यन्त्र में समाजवादियों को फंसाने वाले (1911 के) महा राजद्रोह मुकद्दमें में षड्यन्त्रकारियों को प्राणदण्ड मिलने के बाद निष्क्रिय हो गये थे, वे 1917 की रूसी क्रांति के बाद अपने को व्यक्त करने लग गए। समाजवाद का प्रसार और मजदूरों का संगठन और मजदूरों की ओर से सीधी कार्यवाही काफी बढ़ गयी। इसी वातावरण में चावल दंगों, को "प्रतिशोधात्मक जब्ती" (ओयामा इकुओ) के रूप में देखना संभव हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) युद्ध के बाद वर्सेल्ज और वाशिंगटन (सम्मेलन) व्यवस्थाओं से जापान की असंतुष्टि के क्या कारण थे ? लगभग 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) युद्ध ने जापान की अर्थव्यवस्था की वृद्धि में किस प्रकार मदद दी ? लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) जापान में युद्ध के बाद के उदारवादी विचारों का विवेचन कीजिए। लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

20.7 सारांश

प्रथम विश्व युद्ध ने जापान को मित्र शक्ति के और एक तटस्थ देश के भी, दोनों तरह के, लाभ लेने का अवसर प्रदान किया। तिहरे गठबंधन के सदस्य के रूप में उसने चीन में शांतुग प्रायद्वीप पर और जर्मनी के नियंत्रण में रहे दक्षिणी प्रशांत के द्वीपों पर भी अपना कब्ज़ा बढ़ा लिया। रूसी क्रांति के फलस्वरूप मित्र राष्ट्रों के अभियान में जापान ने बड़ी भूमिका अदा की और उसका इस्तेमाल उसने उस क्षेत्र में एक लंबे समय तक ठहरे रहने के लिए किया।

जापान के प्रारंभिक साम्राज्यवाद के मूल में कई उद्देश्य थे। काफी भूमि और संसाधन वाली एक महाशक्ति बनने की इच्छा, और अपनी पूँजी की कमी जिसके फलस्वरूप जापान ने संरक्षित क्षेत्र बनाये जिससे वह पश्चिमी ताकतों के साथ होड़ कर सके। उदारवादी मत रखने वालों ने भी जापान को आधुनिक सभ्यता के लाभों का प्रसार करने वाले राज्य के रूप में देखा।

युद्ध में जापान की प्रत्यक्ष भागीदारी भूमध्य सागर में जहाज़ों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए कुछ सैनिक भेजने तक ही सीमित थी। इस अवसर का लाभ उसने अपने व्यापार को बढ़ाने और अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर करने के लिए उठाया। युद्ध से बने अभावों के कारण जापान को अपनी क्षमताओं का विकास करना पड़ा और इसे पोत-निर्माण, मशीनरी जैसे निर्माण (उत्पादन) क्षेत्र की वृद्धि और अभियान्त्रिकी कौशलों के विकास में देखा जा सकता है।

उद्योग के विकास के साथ मजदूर संगठनों और औद्योगिक कार्यवाहियों में भी वृद्धि हुई। विशेषतौर पर चावल की कीमतों में वृद्धि को लेकर दंगे हुए जो आमदनियों में बढ़ती असमानता और सामाजिक और आर्थिक समानता की बढ़ती मांग के द्योतक थे। विभिन्न धाराओं के चिंतक, राष्ट्रवादी, उदारवादी और समाजवादी इस दृष्टिकोण को बनाने के लिए चिंतित थे कि एक अपेक्षाकृत न्याय संगत समाज की रचना किस तरह की जा सकती थी। इन वर्षों में हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स में बहुमत रखने वाले जनता के चुने दलों की सरकार के पास कहीं अधिक अधिकार होते थे। इसे **"ताइशो जनतंत्र"** का नाम दिया गया है। विद्वान लोग इस बात पर बहस करते हैं कि जनतंत्र किस सीमा तक स्थापित हुआ, और वे संस्थागत और वैचारिक दोनों अर्थों में दलों की कमजोरियों की ओर संकेत करते हैं।

युद्ध की समाप्ति पर उससे मिले कई लाभ भी जापान के हाथों से जाते रहे, लेकिन वर्सेल्ज़ शांति संधि और वाशिंगटन सम्मेलन के बीच बनी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था ने इंग्लैंड, अमेरिका और जापान के बीच सहयोग बनाने का प्रयास किया। जापान ने चीन में अपने विशेषाधिकार बढ़ा तो लिए, लेकिन जापान में अनेक लोग अपनी स्थिति से असंतुष्ट थे। जापानी नेताओं ने उत्तर की ओर या दक्षिण की ओर या दोनों ही दिशाओं में विस्तार करने, या बिल्कुल विस्तार ही नहीं करने के पक्ष और विपक्ष में बहस की।

20.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इस प्रश्न के उत्तर में आपको यह बताना है कि कैसे जापान ने एक ओर तो पश्चिमी देशों के विरुद्ध एशिया की एकता के सवाल को उठाया, और फिर चीन, कोरिया और मंचूरिया आदि में अपना प्रभाव बढ़ा कर एक साम्राज्यिक शक्ति के रूप में उभरने के लिए इसका उपयोग किया। जापान के साथ पश्चिमी ताकतें जैसा व्यवहार कर रही थीं, जापान ने अपने पड़ोसी देशों के साथ कोई उससे अच्छा व्यवहार नहीं किया। इस संदर्भ में उदाहरण भी दीजिए। उत्तर भाग 20.2 और भाग 20.3 पढ़ने के बाद लिखें।

2) प्रमुख तौर पर इसलिए क्योंकि जापान को इसमें अपनी औपनिवेशिक चालों को आगे बढ़ाने, अपनी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने और एक बड़ी ताकत के रूप में उभरने का अवसर दिखायी दिया। देखिए भाग 20.3.

3) भाग 20.2 में उल्लेखित रूस-जापान युद्ध के बाद के विकल्पों को गिनायें।

बोध प्रश्न 2

1) जापान को यह लगा कि उसे इन व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप युद्ध के दौरान एशिया और प्रशांत क्षेत्र को लौटाना पड़ा था, युद्ध के बाद उसके लाभों को बांटने की प्रक्रिया में पश्चिमी ताकतों ने उसके साथ उचित व्यवहार नहीं किया, आदि। उत्तर भाग 20.4 के आधार पर लिखें।

2) युद्ध के दौरान जापान अपने उत्पादनों के लिए बाजार हासिल करने में समर्थ रहा क्योंकि पश्चिमी राष्ट्र मुख्यतौर पर युद्ध से संबंधित उत्पादन में व्यस्त थे। इससे जापान में कुछ वस्तुओं का उत्पादन बढ़ गया। उत्तर भाग 20.5 के आधार पर लिखें।